अतः; **उत्तिष्ठ**=खड़ा हो; **कौन्तेय**=हे कुन्तीपुत्र; **युद्धाय**=युद्ध के लिए; **कृत**=दृढ़; **निश्चयः**=संकल्प सहित।

अनुवाद

हे कुन्तीपुत्र ! यदि तू युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा और यदि जीत गया तो पृथ्वी के साम्राज्य का उपभोग करेगा। इसलिए खड़ा होकर दृढतापूर्वक युद्ध कर।।३७।।

तात्पर्य

यद्यपि अर्जुन के पक्ष की विजय पूर्वनिश्चित नहीं है, तथापि वह युद्ध करने को बाध्य है, क्योंकि यदि वह मारा भी जाय, तो उसे स्वर्ग की ही प्राप्ति होगी।

11.2

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।३८।।

सुख=सुख; **दुःखे**=दुःख में; **समे**=समतायुक्त; **कृत्वा**=होकर; **लाभालाभौ**=लाभ तथा हानि में; **जयाजयौ**=जय-पराजय में; **ततः**=तदुपरान्त; **युद्धाय**=युद्ध के लिए; **युज्यस्व**=युद्ध कर; **न**=नहीं; **एवम्**=इस प्रकार (युद्ध करने से); **पापम्**=पाप को; **अवाप्स्यसि**=प्राप्त होगा।

अनुवाद

सुख-दुःख, हानि-लाभ तथा जय-पराजय को समान समझकर निष्काम भाव से युद्ध कर। ऐसा करने पर तू पाप से कलुषित नहीं होगा।।३८।।

तात्पर्य

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को स्पष्ट रूप से युद्ध के लिये ही, अर्थात् निष्काम भाव से युद्ध करने की आज्ञा दे रहे हैं, क्योंकि उनकी ऐसी ही इच्छा है। कृष्णभावनाभावित क्रियाओं में सुख-दुःख, हानि-लाभ जय-पराजय का विचार नहीं किया जाता। प्रत्येक क्रिया को श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए करना बुद्धियोग कहलाता है। इस प्रकार से प्राकृत कर्म करने पर भी बन्धन नहीं होता। जो निजेन्द्रियतृप्ति के लिए सात्त्विक अथवा राजस कर्म करता है, उसी को शुभ-अशुभ कर्मफल मिलता है; परन्तु जो पूर्ण रूप से श्रीकृष्णभावनाभावित क्रियाओं के ही शरणागत हो गया है, वह भक्त साधारण जीवन-पद्धति के समान किसी का भी ऋणी अथवा किंकर नहीं रहता। शास्त्र-वचन (भागवत ११.५.४१) हैः

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्।।

''अन्य सब कर्तव्यों को त्याग कर जो मनुष्य अनन्यभाव से मुक्तिदाता श्रीकृष्ण के ही शरणागत हो जाता है, उसका देवताओं, अन्य सब प्राणियों, स्वजनों, मानव जाति और पितरों के प्रति कुछ भी कर्तव्य अथवा ऋण शेष नहीं रहता।''